

## गुप्तकालीन अर्थव्यवस्था

डॉ० धर्मेन्द्र कुमार तिवारी  
(विषय विशेषज्ञ)

प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

E-mail : dktiwari143lko@gmail.com

प्राचीन भारत में गुप्त शासकों का शासनकाल महानता का एक अप्रतिम उदाहरण है। लगभग 300 ई० से लेकर 550 ई० तक गुप्त शासकों का शासन न सिर्फ उत्तर भारत में ही रहा वरन् समुद्रगुप्त जैसे शासकों ने दक्षिण भारत में भी अपनी महानता की उपस्थिति दर्ज कराई थी। लगभग 250 वर्षों के शासनकाल में गुप्त साम्राज्य में अनेक महान शासक हुए, जिनमें चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त का शासनकाल सभी दृष्टिकोण से भारत के लिए अविस्मरणीय कहा जा सकता है। गुप्तकालीन समस्त शासकों ने पाटलिपुत्र को राजधानी बनाकर देश के चारों दिशाओं में अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया। चन्द्रगुप्त द्वितीय जैसे महान शासक ने तो पश्चिम भारत को जीतकर उज्जयिनी को अपनी दूसरी राजधानी बनाई थी। गुप्त युग को 'प्राचीन भारत का स्वर्णयुग' कहा जाता है। गुप्तकाल में पूर्व से चले आ रहे व्यापारिक मार्गों, वाणिज्यिक संगठनों के स्वरूप, मुद्रा प्रणाली, व्यापारिक प्रथाओं आदि में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता है। पूर्व की भांति इस युग में भी उद्योग एवं व्यापार की निरंतर प्रगति होती रही, लेकिन विदेश व्यापार की दृष्टि से इस युग में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाई देते हैं, जिनमें दो परिवर्तन सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे— रोमन व्यापार का पतन और दक्षिण भारत के तीन सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध तीनों पत्तनों— मुजिरिस, अरिकमेडु और कावेरीपत्तनम् का भी पतन।

आन्तरिक व्यापार में इस युग ने भारत के विभिन्न दिशाओं की ओर अपना विस्तार प्रारम्भ किया। कालिदास, जनस्रुतियों में जिनकी गणना चन्द्रगुप्त द्वितीय के दरबार के नवरत्नों में की जाती है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में इस युग के नगरीय बाजारों और उसमें होने वाली तत्कालीन व्यापारिक गतिविधियों का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। पूर्व युग की भांति इस युग में भी हमें व्यापारिक संगठनों का उल्लेख मिलता है जिनमें श्रेष्ठी एवं सार्थ प्रमुख थे। गुप्तयुगीन आन्तरिक व्यापार श्रेष्ठी, सार्थवाह, कुलिक और निगम के माध्यम से संगठित और सुव्यवस्थित होता था। श्रेष्ठी या साहूकार बैंकों के रूप में कार्य करते थे, जबकि सार्थ कारवां या भ्रमणशील व्यापारी थे, जिनका नगरीय जीवन में महत्वपूर्ण स्थान होता था।

आंतरिक व्यापार में विभिन्न वस्तुएं क्रय-विक्रय की जाती थी तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जाती थीं। ऐसे व्यापारी जो अपने घोड़ों, बैलों या अन्य पशुओं अथवा रथों में लादकर समूह में एक स्थान से दूसरे स्थान पर पैदल आते-जाते थे तथा क्रय-विक्रय करते थे 'सार्थ' के नाम से विख्यात थे। कभी-कभी उन्हें 'सांगत्रिक' भी कहा जाता था। उन व्यापारियों के नेता को 'सार्थवाह' के नाम से जाना जाता था, जो व्यापारियों समूह को नेतृत्व प्रदान करता था। सार्थ में सम्मिलित होकर चलने वाले व्यापारियों के मध्य आपस में ऐक्य की भावना होती थी। हानि-लाभ के लिए वे समान रूप से उत्तरदायी होते थे और नियमों-विनियमों द्वारा आबद्ध रहते थे। सार्थ में पांच प्रकार के लोग होते थे-

1. मंडी सार्थ- व्यापारिक सामान और माल लादकर सम्मिलित होने वाले व्यापारी।
2. वहलिका- घोड़े, बैल और उंट आदि वाहन वाले व्यापारी।
3. भारवाह- माल ढोने वाले लोग।
4. औदारिका- आजीविका के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान जाने वाले लोग।
5. कार्पटिक- साधु और भिक्षु।

उस युग में बाजार को 'विपणि' की संज्ञा दी गई थी, जहां क्रय-विक्रय के लिए अनेकानेक वस्तुएं एकत्र की जाती थीं।<sup>1</sup> आंतरिक व्यापार की पण्य वस्तुओं में दैनिक उपयोग की लगभग सभी वस्तुएं शामिल थीं जिन्हें नगरों एवं ग्रामों के बाजारों में मुख्यतः बेचा जाता था, जबकि विलासितापूर्ण वस्तुओं में दूर प्रदेशों से लाई गई वस्तुएं शामिल थीं। नारद एवं वृहस्पति स्मृति में इस युग के क्रेताओं-विक्रेताओं के समान हितों की रक्षा हेतु अनेक नियम-कानून बनाए गए थे। इस युग में वस्तुओं की कीमतें हमेशा स्थिर नहीं रहती थीं स्थान-स्थान के अनुसार इनमें परिवर्तन दिखाई देता है। इसी तरह तौल और माप में भी अन्तर होता था। आन्तरिक व्यापार सड़कों और नदियों द्वारा किया जाता था और विदेश व्यापार सामुद्रिक तथा स्थल मार्ग से होता था।

तत्कालीन साहित्य से जो सन्दर्भ प्राप्त होते हैं उनसे पता चलता है कि उस समय लोग व्यापारिक कार्य व्यक्तिगत रूप में न करके सामूहिक रूप से करते थे। समान उद्योग तथा वाणिज्य करने वाले अपना संगठन बना लेते थे और उस संगठन के माध्यम से ही अपना काम करते थे। इस प्रकार के संगठनों को 'श्रेणी' नाम से जाना जाता था। बौद्ध ग्रन्थ महावस्तु और अन्य गुप्तकालीन ग्रन्थ जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति में अनेक श्रेणी संगठनों का उल्लेख मिलता है। जिनसे प्रतीत होता है कि श्रेणियां उद्योग

और उत्पादन का काम करने वाले लोगों की ही थीं। विक्रय व्यवस्था करने वाले श्रेणियों की जानकारी इनसे कम ही होती है। गुप्तकालीन अभिलेखों से भी यही बात पता चलती है। मन्दसौर से प्राप्त एक अभिलेख में पट्टवायों (रेशमी कपड़ा बुनने वालों) की श्रेणी का और इन्दौर (जिला-बुलन्दशहर) से प्राप्त एक ताम्रलेख में तैलिक श्रेणी का उल्लेख है।<sup>2</sup>

इस युग में समुद्र द्वारा होने वाले व्यापार में निरंतर प्रगति होती रही। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में भारत आने वाले चीनी यात्री फाह्यान के विवरण से पता चलता है कि व्यापारियों हेतु समुद्री व्यापारिक मार्ग सुरक्षित नहीं होते थे। चीन से भारत तक का मध्य-एशियाई मार्ग खतरों से भरा रहता था। भारतीय पत्तनों का श्रीलंका, फारस, अरब, इथोपिया, बैजन्टाइन (रोमन) साम्राज्य, चीन तथा हिन्द महासागर के द्वीपों के साथ स्थाई सामुद्रिक सम्बन्ध बना हुआ था। गुप्तकाल में चीन के साथ भारत के विदेश व्यापार में अत्यधिक वृद्धि हुई। चीन का रेशम जो 'चीनांशुक' नाम से प्रसिद्ध था भारत के बाजारों में अत्यधिक लोकप्रिय था। गुप्तकाल में भारत द्वारा विदेशों को कुछ प्रमुख वस्तुएं निर्यात की जाती थीं। किसी अज्ञातनामा लेखक की पुस्तक 'पेरिप्लस ऑव दि इरीथ्रियन सी' से पता चलता है कि भारत से लाल मिर्च, हांथी-दांत, मोती, रेशम, हीरा आदि मणि और मसाले विदेशों को निर्यात किए जाते थे। कॉस्मास (छठीं शताब्दी के मध्य भाग में भारत आने वाला यात्री) के अनुसार भारत के पूर्वी तट से सिंहल को चन्दन, लौंग और सुगन्धि जाता था और वहां से वह पश्चिमी देशों फारस और अबीसीनिया के बन्दरगाहों को निर्यात किया जाता था। मलाबार के तटवर्ती पांच बन्दरगाहों से लाल मिर्च का निर्यात होता था। उसका यह भी कहना है कि कल्याण से शीशम आदि लकड़ी के सामान बाहर भेजे जाते थे। कुछ प्रकार के वस्त्र भी बाहर से अन्य देशों को भेजे जाते थे।<sup>3</sup>

गुप्त साम्राज्य के पतन काल में भारत आने वाला कॉस्मस् इण्डिको प्लूयेस्टस् ने उस युग के भारतीय आयात-निर्यात का अच्छा परिचय दिया है। उस समय तक भारतीय व्यापार का एक बड़ा भाग लंका (सिंहल) की ओर मुड़ चुका था, जो भारतीय महासमुद्र के करीब-करीब बीचो-बीच उस द्वीप की स्थिति होने के कारण सहज था। वहां जो भी माल आयातित होते थे उन्हें पुनः या तो पूर्व के द्वीप समूहों में सीधे समुद्र से भेजा जाता था अथवा पश्चिम के समुद्री मार्गों से पश्चिमी देशों को निर्यातित किया जाता था। कॉस्मस् भारत के पश्चिमी तट के समुद्री बन्दरगाहों की गिनती करते हुए सिन्धु, गुजरात तथा कल्याण का उल्लेख करता है।<sup>4</sup> गुप्तकालीन ग्रन्थों से उस समय के कुछ व्यापारिक मार्गों की जानकारी मिलती है। मथुरा का उस समय के प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों में गणना की जाती थी। यदि उसको केन्द्र

मान लिया जाय तो उत्तर-पश्चिम की ओर मुख्य मार्ग पंजाब की नदियों के साथ-साथ आगे बढ़कर सिन्धु नदी को पारकर उसके मैदान से होता हुआ हिन्दुकुश पारकर तक्षशिला पहुंचता था। वहां से यह मार्ग काबुल नदी के साथ-साथ हिड़डा, नगरहार होता हुआ बामियान पहुंचता था। देश के भीतर मथुरा से जो अन्य मार्ग जाते थे वे समुद्र तटवर्ती विभिन्न बन्दरगाहों को पहुंचते थे। एक मार्ग पूरब में काशी-पाटलिपुत्र होता हुआ ताम्रलिप्ति के बन्दरगाह को जाता था। दूसरा मार्ग उज्जयिनी होते हुए नर्मदा की घाटी में प्रवेश कर पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित भरुकच्छ (भड़ौच) और शूर्पारक (सोपारा) के बन्दरगाहों तक जाता था। इन बन्दरगाहों से एक दूसरा मार्ग विदिशा होकर बेतवा की घाटी से होते हुए कौशाम्बी पहुंचता था। दक्षिण का मार्ग उज्जयिनी, माहिष्मती होते हुए प्रतिष्ठान जाता था, वहां के आगे अन्य अनेक मार्ग थे। इन प्रमुख मार्गों के अतिरिक्त अन्य अनेक छोट-छोटे मार्ग भी थे जो देश के एक-दूसरे नगरों को मिलाते थे।<sup>5</sup> गुप्त युग में जलमार्ग का भी अधिक प्रचलन हुआ। देश के आन्तरिक व्यापार में नदियों का उपयोग किया जाता था, जिसमें छोटी-बड़ी सभी प्रकार की नावें चला करती थीं। जिस प्रकार उत्तरी भारत में सिन्धु, रावी, चेनाब, गंगा, यमुना और सरयू जैसी नदियों के तट पर लगी नावें व्यापारिक कार्यों में सहयोग करती थीं, उसी प्रकार दक्षिणी भारत में नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी जैसी नदियों के तटों पर भी व्यापार हेतु नावें लगी रहा करती थीं।<sup>6</sup>

आर्थिक जीवन की समृद्धि का सूचक मुद्राएं हुआ करती हैं। आर्थिक दृष्टि से गुप्तकाल का महत्व इस बात में है कि गुप्त सम्राटों ने अत्यधिक मात्रा में स्वर्ण सिक्के प्रचलित किए। प्रारम्भिक गुप्तकालीन सिक्के स्पष्टतयः कुषाणों के सिक्कों के समान थे, लेकिन स्कन्दगुप्त के शासनकाल के उत्तरार्द्ध के परवर्ती गुप्तकालीन सिक्के चांदी के हैं और पूर्ववर्ती सम्राटों के सिक्कों की अपेक्षा अधिक भारी हैं। इन सिक्कों में सोने का अंश भी बहुत कम हो गया है। यह सम्भवतः हूणों और अन्य जातियों के साथ हुए युद्धों से उत्पन्न आर्थिक परिस्थितियों के कारण ऐसा हुआ होगा। मुद्रा के साथ-साथ वस्तु विनिमय की प्रणाली भी इस समय प्रचलन में थी।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि गुप्तकालीन व्यापार एवं वाणिज्य निरंतर प्रगति पर रहा। इस युग में आन्तरिक व्यापार के साथ-साथ बाह्य व्यापार भी उन्नति पर था। व्यापारिक समृद्धि के कारण ही गुप्तयुगीन प्रमुख शासकों ने देश के चारों दिशाओं में अपने साम्राज्य का विस्तार कर गुप्त युग को स्वर्ण युग के प्रतिमान पर लाकर खड़ा किया।

## सन्दर्भ-ग्रन्थ

1. मिश्र, जयशंकर– प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पटना–जून 1986, पृ0 629
2. गुप्त, परमेश्वरी लाल– गुप्त साम्राज्य, वाराणसी 1991, पृ0 462
3. उपर्युक्त– पृ0 461
4. पाठक, विशुद्धानन्द– प्राचीन भारतीय आर्थिक इतिहास, लखनउ 2004, पृ0 204
5. गुप्त, परमेश्वरी लाल– उपर्युक्त– पृ0 457–458
6. मिश्र, जयशंकर– उपर्युक्त– पृ0 653